बस्ते का बोझ कम नहीं होगा, क्योंकि.....

डॉ. सुशील जोशी

सुझाव यह है कि मनोवैज्ञानिकों को चाहिए की परीक्षा को एक मनोवैज्ञानिक समस्या मानकर इसका अध्ययन करें। शिक्षा मनोविज्ञान एक विषय ज़रूर है मगर शायद ही कभी कोई ऐसा अध्ययन किया गया हो कि परीक्षा के समय (जो आजकल लगभग साल भर चलता है) बच्चे किस तरह के त्रास और तनाव से गुज़रते हैं। इस शिक्षा का यह मनोवैज्ञानिक बोझ क्यों आज तक अध्ययन का विषय नहीं बना है?

एक सत्र और बीत गया है, परीक्षाएं निपट गई हैं, परिणाम का इंतज़ार है। नए सत्र के साथ एक बार फिर बस्ते के बोझ पर घड़ियाली आंसू बहाए जाएंगे। मगर निश्चिंत रहें। बस्ते का बोझ कम नहीं होगा, अगले साल भी इस लेख के लिए गुंजाइश रहेगी।

मुझे अंदाज़ नहीं है कि बस्ते का बोझ आजकल कितने किलोग्राम है मगर साइज़ देखकर लगता है कि पांच-सात किलोग्राम तो होगा। वैसे बस्ते का बोझ सिर्फ किलोग्राम में नापा जाए, यह ज़रूरी नहीं है। इस बोझ को बोझिलता के पैमाने पर भी नापने की ज़रूरत है। मगर पहले यही देखें कि गुरुत्वाकर्षण बल के आधार पर बस्ते का वज़न इतना क्यों हैं।

भौतिक वज़न

शायद सभी जानते हैं कि आजकल प्राथमिक कक्षाओं में सरकार द्वारा तीन-चार किताबें सुझाई जाती हैं। इनमें भाषा, गणित व पर्यावरण अध्ययन की किताबें प्रमुख रूप से होती हैं। प्रत्येक किताब 200 ग्राम की मान लें तो कुल वज़न 800 ग्राम से अधिक नहीं होना चाहिए। इसमें इतना ही वज़न कॉपियों, स्लेट, कम्पास बॉक्स, टिफिन और पानी की बोतल का जोड़ दें। तो कुल वज़न डेढ़ किलो से ज़्यादा नहीं होना चाहिए। वैसे तो बच्चों को पानी ढोने की मजबूरी क्यों होना चाहिए, पता नहीं।

बहरहाल, यह डेढ़ किलो का बस्ता पांच-सात किलो का कैसे हो जाता है? इस संदर्भ में आप देखें कि सरकार व निजी स्कूलों के बस्तों के वज़न में बहुत फर्क होता है। निजी स्कूलों का बस्ता अपेक्षाकृत भारी है।

मेरे कई मित्रों के बच्चे निजी स्कूलों में पढ़ते हैं। उनका कहना है कि निजी स्कूल सत्र की शुरुआत में ही बच्चों को कई ऐसी किताबें खरीदवाते हैं जो अनुशंसित नहीं हैं। बल्कि अक्सर तो स्वयं स्कूल ही ऐसी किताबें बेचते हैं। दूसरी-तीसरी के बच्चों से 600-700 रुपए की किताबें खरीदवा देना आम बात है। ये किताबें नैतिक शिक्षा से लेकर अंग्रेज़ी वर्णमाला तक की हो सकती हैं। और काफी महंगी भी होती हैं। बताया जाता है कि इस गतिविधि में प्रकाशकों और निजी स्कूलों के बीच कोई लेन-देन का अनुबंध भी होता है। तो निजी स्कूलों में बस्ते का बोझ बढ़ने का कारण कोई शैक्षिक अवधारणा नहीं, वरन खालिस व्यापारिक चेतना है। ये निजी स्कूल दरअसल स्वयं भी इसी चेतना के परिणाम हैं।

यह दलील दी जा सकती है कि बच्चों को जितनी ज़्यादा पुस्तकें पढ़ने को मिलें, उतना अच्छा है। इससे ज्ञान ही तो बढ़ेगा। यह दलील वैसे तो सही लगती है मगर तब एकदम खोखली नज़र आती है जब आप यह देखें कि ज्ञान के हिमायती इन अधिकांश निजी स्कूलों में पुस्तकालय नहीं हैं। वैसे आजकल शायद स्कूल खोलने की अनुमति की एक शर्त यह भी है कि स्कूल के पास अपना पुस्तकालय हो। होशंगाबाद शहर का एक निजी स्कूल इस शर्त को पूरा करने के लिए चाहता था कि कहीं से एक दिन के लिए किताबें उधार मिल जाएं तो उनका फोटो खिंचवाकर अपने आवेदन के साथ नत्थी कर दें। उस स्कूल ने एक गैर सरकारी संस्था से यहां तक अनुरोध किया था कि वह अपने पुस्तकालय का ही फोटो खींच लेने दे।

तो, निजी स्कूलों द्वारा ढेरों किताबें खरीदवाने/बेचने के पीछे ज्ञानवृद्धि का कोई लक्ष्य नहीं है। स्वयं स्कूलों की तरह यह भी एक व्यापार है। अब कैसे कम हो बस्ते का बोझ?

पालकों की दुविधा

सरकारी स्कूलों की हालत खस्ता क्यों है, इस सवाल में न जाते हुए, इतना तो तय है कि इसी खस्ता हालत के कारण सामर्थ्यवान पालक अपने बच्चों को निजी स्कूलों में डाल रहे हैं। उन्होंने मान लिया है कि शिक्षा वही है जो निजी स्कूलों में होती है। इसलिए वे भी खुशी-खुशी वह सब करते हैं जो ये स्कूल चाहते हैं। वैसे भी हमारे यहां शिक्षा का सम्बंध 'मुखाग्र', 'कंठस्थ', 'मुंहज़बानी' आदि शब्दों से जोड़ा जाता है। आजकल बढ़ते क्रम में परीक्षा परिणामों को भी शिक्षा का पर्याय माना जाने लगा है। लिहाज़ा जिस स्कूल के परीक्षा परिणाम अच्छे हों, वही स्कूल अच्छा होता है। अब जब पालक स्वीकार कर चुके हैं कि ये निजी स्कूल अच्छे हैं तो उनकी कोई बात टाल कैसे सकते हैं? और निजी स्कूलों की कार्यशैली व माहौल स्वयं मध्यम वर्गीय संस्कार की धारणा से मेल खाते हैं। तब बस्ते का बोझ बढ़ता है, तो बढ़े।

बोझ और भी हैं

परीक्षा को शिक्षा का पर्याय मान लेने पर बच्चों और पालकों को कई और बोझ ढोना होते हैं। सबसे पहला बोझ तो तनाव और चिंता का है। परीक्षा परिणामों से सम्बंधित आत्महत्याओं की खबरें आती हैं तो थोड़ी सनसनी फैलती है मगर बात आई-गई हो जाती है। मगर यदि हम इन आत्महत्याओं को एक सामान्य समस्या का सनसनीखेज़ लक्षण मानें तो शायद पता चलेगा कि समस्या कहीं अधिक व्यापक व गम्भीर है। मेरा तो सुझाव यह है कि मनोवैज्ञानिकों को चाहिए की परीक्षा को एक मनोवैज्ञानिक समस्या मानकर इसका अध्ययन करें। शिक्षा मनोविज्ञान एक विषय ज़रूर है मगर शायद ही कभी कोई ऐसा अध्ययन किया गया हो कि परीक्षा के समय (जो आजकल लगभग साल भर चलता है) बच्चे किस तरह के त्रास और तनाव से गुज़रते हैं। इस शिक्षा का यह मनोवैज्ञानिक बोझ क्यों आज तक अध्ययन का विषय नहीं बना है?

बोझ बोझिलता का

जब किताबें रटने को ही शिक्षा मान लिया गया हो, तो जितनी ज़्यादा, जितनी मोटी-मोटी किताबें रटो, उतना अच्छा। आम लोग प्रायः यही देखते हैं कि उनके बच्चों के कोर्स में कितनी किताबें हैं। यह मानकर चला जाता है कि उनके अंदर जो कुछ लिखा है वह ठीक-ठाक ही होगा। यदि कोई बच्चा कहे कि उसे अमुक विषय या अमुक पाठ समझ नहीं आ रहा है, तो पहली प्रतिक्रिया यही होती है कि फिर से पढ़ो। उसके बाद लगाई जाती है ट्यूशन। फिर भी समझ न आए तो बच्चा सदैव इस बोझ को ढोता है कि उसकी अक्ल में कुछ कमी थी। वर्तमान शिक्षा की वजह से आत्मविश्वास टूटने का यह बोझ अधिकांश बच्चे जीवन भर ढोते हैं।

यदि आप थोड़ी संवेदनशीलता से, बच्चे पर फतवा ज़ारी किए बगैर आजकल की पाठ्यपुस्तकों को देखें तो पाएंगे कि उनमें तमाम असम्बंधित बातें, निरर्थक ढंग से लिखी हुई हैं। कई शिक्षकों ने बताया है कि उन्हें भी इनमें से अधिकांश बातें समझ नहीं आती हैं। हां, वे इतना ज़रूर जानते हैं कि उस पाठ्यवस्तु से सम्बंधित परीक्षा प्रश्नों के उत्तर क्या होंगे (यानी क्या उत्तर देने पर अंक मिल जाएंगे)। यही बात छात्रों को बताना ही शिक्षा है। कई बच्चे कक्षा में बोर होते हैं, अपमानित किए जाते हैं, स्कूल छोड़ने पर मजबूर हो जाते हैं।

जॉन होल्ट ने कहा है कि इस शिक्षा व्यवस्था में अधिकांश बच्चे तो असफल होते हैं। इस असफलता के बोझ को कौन ढोएगा? किसी प्रकार से परीक्षा में सही उत्तर लिख देना, न लिख पाए तो किसी और जुगाड़ से परीक्षा पास कर लेना, इन गुरों से सभी परिचित हैं। इनमें से कई को 'अनुचित तरीके' कहा जाता है। 'अनुचित तरीकों' का उपयोग करके सफल होने के अपराध बोध के बोझ को भी तो बच्चा ही ढोएगा।

और सबसे बड़ा बोझ

जब हम परीक्षाएं पास करते जाते हैं तो यह मुगालता भी बढ़ता जाता है कि हमें 'आता' है। धीरे-धीरे पूरा समाज इस मुगालते का शिकार हो जाएगा। तैरने के सिद्धांत सीखकर हम जब तैर नहीं पाएंगे, तो इस मुगालते के बोझ से डूबने के अलावा क्या करेंगे? ***(स्रोत फीचर्स)***